निठारी काण्ड : पूँजीवादी व्यवस्था, सभ्यता और संस्कृति की ह्रास कथा

● अभिनव

निठारी काण्ड से सभी लोग अच्छी तरह वाकिफ़ होंगे। हर संवेदनशील व्यक्ति की संवेदनाओं को इस बर्बर घटना ने अन्दर तक हिलाकर रख दिया है। निठारी काण्ड के बाद देश के कई हिस्सों से ऐसी ही घटनाओं की ख़बरें आईं। एक अस्पताल के बाहर से भ्रूणों और शिशुओं की हड्डियाँ बरामद हुईं, एक प्रयोगशाला से बच्चों के नरकंकाल मिलने की ख़बर आयी और मुक्तसर में एक राइस शेलर से भी कुछ बच्चों के नरकंकाल पाए गए। इन घटनाओं ने इस पूरी व्यवस्था ही नहीं, इस पूरी सभ्यता और संस्कृति पर प्रश्नचिन्ह खड़ा कर दिया है। इन घटनाओं के दौरान इस पूँजीवादी व्यवस्था के हर चेहरे से मुखौटों और नक़ाब को उतार फेंका है। चाहे वह पूँजीपति वर्ग हो, नौकरशाही हो, पुलिस हो, मीडिया हो, सभी को निठारी काण्ड ने अलफ़ नंगा कर दिया है। एक पूँजीपति और उसका अमानवीकृत नौकर जो बच्चों के साथ दुष्कर्म करके उनकी हत्या कर देते थे और फिर उनका नरभक्षण करते थे, एक डॉक्टर जिसपर उन बच्चों के अंग बेचने का सन्देह है, मीडिया जो तब तक निठारी की घटनाओं को सनसनी बनाकर बेचता रहा जब तक इन ख़बरों का बिक्री मूल्य बरकरार था, नौकरशाही जो इस पूरे दुष्कर्म में सहअपराधी थी, पुलिस जो इस दुष्कर्म में शामिल ऊँची हस्तियों को बचाने के लिए मोनिन्दर सिंह की कोठी से सबूत मिटाने का काम करती रही और जिसे सीबीआई ने भी स्वीकारा। यहाँ तक कि सुप्रीम कोर्ट ने भी यह कहकर छुट्टी पा ली कि निठारी काण्ड पुलिस सुधार लागू न होने की वजह से हुआ। यह भी इस व्यवस्था की सड़ाँध को छिपाने के लिए धूपबत्ती जलाने से अधिक और कुछ नहीं था, हालाँकि इससे यह सड़ाँध और भी असह्य हो गयी।

हम सभी जानते हैं कि सवाल पुलिस सुधारों को लागू करने या न करने का है ही नहीं। मुद्दा यह है कि वह कौन-सी ज़मीन है जो मोनिन्दर सिंह और सुरेन्दर कोली जैसे नरभक्षियों को पैदा करती है? जब तक मोनिन्दर सिंह और सुरेन्दर कोली जैसे लोगों को यह समाज पैदा करता रहेगा तब तक ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति को नहीं रोका जा सकता। ये करोड़ों के मालिक अपनी ज़िन्दगी में खा-पी-अघाकर बोर होने के बाद, अपनी मुनाफ़े की हवस को मज़दूरों और मेहनतक़शों का खून निचोड़कर शान्त करने के बाद, उनके बच्चों के शरीर से अपनी हवस को शान्त करते हैं।

निठारी काण्ड कोई आम घटना नहीं है जो पूँजीवादी समाज में सड़कों पर रोज़ घटती है; यह कोई प्रतिनिधि घटना भी नहीं है; **यह इस पूँजीवादी व्यवस्था की प्रतीक घटना है।** यह किसी शारीरिक हवस के आवेश में आकर किये गये अपराध नहीं हैं। ये बेहद सोच-समझकर ठण्डे तरीक़े से की गयी हत्याएँ हैं जिसमें इस समाज का नैतिक, सामाजिक पतन साफ़ नज़र आता है। मेहनतक़शों के बच्चों के साथ साल-दर-साल दुष्कर्म करके उनकी हत्याएँ करना और फिर उनका मांस-भक्षण करना एक ऐसा अपराध है जो यह दिखलाता है कि इस देश का पूँजीपति वर्ग रुग्ण, विक्षिप्त और बीमार हो चुका है जो अपने लाभ की हवस को मिटाने के बाद बच्चों के शरीर से अपनी भूख मिटाने पर आमादा है। यह दिखलाता है कि इस समाज में इंसानी जान की कोई कीमत नहीं है। मेहनतक़शों की जान का अपने आपमें कोई मतलब नहीं है अगर वह मुनाफ़ाखोरों-मुर्दाखोरों की हर किस्म की हवस को मिटाने के काम नहीं आती है। ग़रीबों के वजूद का अर्थ तभी है जब वह उनकी हवस को शान्त करने के लिए हो। **निठारी काण्ड सिर्फ़ पूँजीवादी समाज, अर्थव्यवस्था और कानून-व्यवस्था की असफलता को नहीं दिखलाती। यह पूरी पूँजीवादी सभ्यता के मरणोन्मुख, सड़ाँध मारते चरित्र और उसके नरभक्षीपन को नंगा करती है। यह पूँजीवादी सभ्यता की पतनकथा है।**

इस समाज और व्यवस्था से हम कुछ कम की उम्मीद नहीं कर सकते। ये हमें यही दे सकती है। हर साल इस देश में लाखों बच्चे लापता हो जाते हैं और कभी नहीं मिलते। या तो वे सड़कों पर भीख माँग रहे होते हैं, होटल में प्लेटें साफ़ कर रहे होते हैं, किसी सेठ-व्यापारी की तिजोरी अपने खून से सने सिक्कों से भर रहे होते हैं, या फिर कोई मोनिन्दर और सुरेन्दर उनके साथ दुष्कर्म करके, उनकी हत्या करके उनका भक्षण करते हैं। **यह कानून-व्यवस्था की असफलता नहीं है; यही इस सभ्यता और व्यवस्था की वास्तविक कानून-व्यवस्था है, जो हत्यारों-मुर्दाखोरों-आदमखोरों की सेवा में रत है और ग़रीबों की जान को अपनी देख-रेख में नरभक्षियों के हवाले कर देती है।**

यह पूरी घटना आँखें खोल देने वाली है। यह साफ़ बता रही है कि पूँजीवादी सभ्यता का कुतुबनुमा बता रहा है कि इसका जहाज़ एक ऐसे भँवर की ओर जा रहा है जो उसे इतिहास के गर्त में ले जाकर डुबाएगा। जिस घिनौनी पतनशीलता का शिकार रोमन साम्राज्य था, आज की पूँजीवादी व्यवस्था उससे भी भयंकर पतनशीलता का शिकार है। जब विश्व पूँजीवाद मन्दी के संकट से जूझ रहा था, पूँजीवादी सभ्यता के शिखरों पर भी मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा था और फ्रेडरिक नीत्शे जैसे दार्शनिकों का मानवता-विरोधी दर्शन सामने आ रहा था, तब भी कहा गया था कि पूँजीवादी व्यवस्था अपने अंत की ओर बढ़ रही है। लेकिन यहाँ मुद्दा सिर्फ़ मानवद्रोही

अर्थव्यवस्था और समाज का नहीं है; यहाँ मसला केवल यह नहीं है कि पूँजीपति वर्ग अपने मुनाफ़े की हवस में मेहनतकशों की हड्डी का पाउडर बनाकर बाज़ार में बेच रहा हो; यहाँ सवाल महज इतना नहीं है कि पूँजीपति वर्ग और व्यवस्था मेहनतकशों को लूटकर अपने ऐशो-आराम और सुविधाओं के साज़ो-सामान जुटा रही हो; पतनशीलता का आलम आज यह है कि धनिक समाज का एक हिस्सा अपनी धनलोलुपता में स्वयं भी मानव होने की शर्तों को खो चुका है; यह वर्ग लूटने और निचोड़ने का आदी होता है और यह उसकी आदत होती है। वे कारखानों में मज़दूरों के खून को उनके शरीर से जोंक की तरह चूस जाते हैं, वे बाज़ारों में आम मेहनतकश आबादी की जेब से एक-एक आना निचोड़कर उसे दरिद्रता और भुखमरी का जीवन व्यतीत करने पर मजबूर कर देते हैं, और फिर जब इतने से भी उनका मन नहीं भरता तो वे इस हद तक पहुँच जाते हैं कि अपने ख़ाली निजी समय में मेहनतकशों के बच्चों का मांस-भक्षण करते हैं और उनके साथ दुराचार करते हैं, वे आदमखोर होने की हद तक पहुँच जाते हैं।

निठारी काण्ड पूँजीवादी सभ्यता की ह्रास कथा है। यह दिखलाती है कि आज के नवधनाढ्य वर्ग की हवस और विलासिता और पतनशीलता पॉम्पेई के विलासियों की हवस और विलासिता और पतनशीलता से भी कहीं अधिक घिनौनी है। यहाँ का पूँजीपति वर्ग नीरो से भी ज़्यादा मानवद्रोही और आदमखोर है।

और इस पूरी घटना पर इस देश का तथाकथित जनपक्षधर बुद्धिजीवी वर्ग की क्या प्रतिक्रिया आती है? महज थोड़ा अफ़सोस और शांतिवादी विलाप! बस मध्यवर्गीय नपुंसक भावनात्मकता का बेकार कीचड़! रुदालियों जैसा बनावटी रुदन! निठारी काण्ड पर तमाम अखबारों में इन कलमनवीसों की प्रतिक्रिया इस पूरी व्यवस्था और समाज के प्रति कोई नफ़रत नहीं पैदा करती। यह अंकर्मक रुदन करने से ज़्यादा और कुछ भी करने को प्रेरित नहीं करती है। जब बौद्धिक चुप रहते हैं तो वे समाज को और तेज़ी से गड्ढे की ओर ले जाते हैं। जो घटना हालिया वर्षों में पूँजीवाद की बर्बरतम प्रतीक घटनाओं में एक थी या शायद सबसे बर्बर घटना थी, उसके बारे में भी ऐसा बाँझ लेखन ही दिखला देता है कि इस देश का मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी किस स्थिति में पहुँच चुका है।

इस घटना से इस व्यवस्था की पक्षधरता भी साफ़ जाहिर हो गयी। अभी कुछ माह पहले जब एक बहुराष्ट्रीय सॉफ्टवेयर कम्पनी के एक उच्च अधिकारी का बच्चा अनन्त अगवा हो गया था तो पूरा प्रशासन, मीडिया और नौकरशाही किस तरह हरक़त में आ गयी थी, यह आप सबको याद होगा। तमाम भाँड़-भँड़ुक्के और पूँजीपतियों के दलाल नेता इस अधिकारी के घर संवेदना जताने पहुँच गये थे। समाजवादी पार्टी का नेता अमर सिंह सबसे पहले हमदर्दी जताने पहुँच गया था (जैसा कि कोई भी आसानी से अन्दाज़ा लगा सकता है)। यह घटनां भी नोएडा की ही थी। कुछ ही घण्टों में अनन्त बरामद कर लिया गया था। वहीं दूसरी ओर नोएडा के ही निठारी गाँव से साल-दर-साल सैंकड़ों बच्चे ग़ायब होते रहे और पुलिस रिपोर्ट तक नहीं लिखती थी। एक बार मोनिन्दर सिंह शक़ के कारण गिरफ्तार भी हुआ था लेकिन किसी आला दर्ज़े के नेता के हस्तक्षेप के कारण पुलिस को उसे छोड़ना पड़ा था। और फिर जब पूरी नेताशाही और नौकरशाही इस मामले के कारण बेनक़ाब होने की दहलीज़ पर पहुँच गयी तब मोनिन्दर सिंह और सुरेन्दर कोली को गिरफ्तार करके सारे नेताओं और अफ़सरों को बचाने की कोशिशें शुरू कर दी गयीं। यह बात सभी जानते हैं कि मोनिन्दर सिंह की उसी खूनी कोठी में जलसे हुआ करते थे और उसमें तमाम बड़े नेता, अफ़सर और नौकरशाह आया करते थे। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि यह पीडोफाइल्स को एक पूरा नेटवर्क हो। पीडोफाइल्स वे मानसिक रुग्णता के शिकार वे लोग होते हैं जो बच्चों के शरीर से अपने हवस की भूख मिटाते हैं। पश्चिमी दुनिया ख़ासकर अमेरिका और जर्मनी के नवनात्सियों में यह रुझान काफ़ी पाया जा रहा है। भारत में यह और अधिक रुग्ण रूप में सामने आ रहा है।

खो जाना...

जैसा कि हमने पहले भी बताया है कि इस देश की सड़कों से हर वर्ष लाखों बच्चे ग़ायब हो जाते हैं। खो जाने का अर्थ क्या है? इस व्यवस्था में खो जाने का अर्थ सिर्फ़ किसी मोनिन्दर-सुरेन्दर के हाथ लग जाना ही नहीं है। सोचने की बात यह है कि किनके बच्चे ग़ायब होते हैं। आँकड़े बताते हैं कि ग़ायब होने वाले बच्चों में से अधिकांश आम घरों से आने वाले मेहनतक़शों के बच्चे होते हैं। यह वर्ग एक अदृश्य वर्ग होता है। यह हर जगह मौजूद होता है, लेकिन नज़र नहीं आता। यह हर रोज़ सड़क के किनारे फुटपाथ पर पैदल चलता चुपचाप काम पर जाता है, फैक्ट्रियों में अपने-आपको निचुड़वाता है, उसी तरह वापस आ जाता है। वह बस आदतन जीता जाता है। उसकी ज़िन्दगी में खटने, खाने-पीने और प्रजनन के अतिरिक्त और कोई ऐसी चीज़ नहीं होती जो यह दर्शाती हो कि वह ज़िन्दा है, जो दरअसल वे गतिविधियाँ हैं जो पशु भी करते हैं। जो चीज़ इंसान को इंसान बनाती है वह है संस्कृति, साहित्य, चिन्तन, दर्शन आदि। लेकिन यह उसके नसीब में नहीं, क्योंकि यह सब करने के लिए ख़ाली वक़्त चाहिए होता है जो उसके पास नहीं होता। वह तो 12 से 14 घण्टों तक अपने लिए दो रोटी कमाने में ही ख़र्च कर देता है। यही वह वर्ग है जिसके बच्चे निठारी में ग़ायब हुए। यही वह वर्ग जिसके बच्चे निठारी ही नहीं हर जगह ग़ायब होते हैं और भयंकर अमानवीय शोषण का शिकार होते हैं। ये बच्चे अगर किसी मोनिन्दर या सुरेन्दर के हाथ न भी लगें तो उनके जीवन में खटना, भूखों सोना, दवा और इलाज के अभाव में और भुखमरी के कारण मर जाना, अशिक्षित, असंस्कृत रहा जाना ही लिखा होता है। एक इंसान के तौर पर तो उनकी ज़िन्दगी खोई हुई ही होती है। वे भौतिक तौर पर शाब्दिक अर्थों में न भी खोएँ तो भी उनका बचपन, जीवन, सपने और आकांक्षाएँ खो ही जाते हैं। वे अपने मेहनत के फल के अधिकारी नहीं होते। वह उनसे अलग कर दिया जाता है और बदले में ज़िन्दा रहने की ख़ुराक दे दी जाती है। यह दुनिया वे बनाते हैं लेकिन किसी भी चीज़ पर उनका हक़ नहीं होता, चाहे वह इमारत हो, सड़कें हों, कपड़े, कागज़, कलम हो, अनाज, मकान हो, या कुछ भी हो। इन्हें बनाने वाले लोग इन पर काबिज़ नहीं होते। ये लोग अपने श्रम के उत्पादों से महरूम कर दिये जाते हैं। अलगाव की यह प्रक्रिया उनमें पूरी दुनिया से अलगाव पैदा करती है। पहले वे चीज़ों की दुनिया से अलगाव महसूस करते हैं और फिर वे लोगों से भी अलगाव महसूस करने लगते हैं क्योंकि इस दुनिया में लोग चीज़ों के लिए हैं, न कि चीज़ें लोगों के लिए।

यह अलगाव या बेगानापन भी इस समाज में खो जाने की ही एक अभिव्यक्ति है। यह खोने की प्रक्रिया अपना श्रम, अपनी पहचान, अपना वजूद खोने की प्रक्रिया है। यह उन्हें अकेला बना देती है, सबसे बेगाना बना देती है। इस तरह एक मेहनतक़श भौतिक अर्थों में न भी खोए तो भी वह खुद से और अपने ही भाइयों-बहनों से बेगाना होता है।

एक आर्थिक परिघटना के रूप में मेहनतकशों का खो जाना तो बहुत पहले से ही इस पूँजीवादी समाज की चारित्रिक आभिलाक्षणिकता था। निठारी काण्ड ने और इस काण्ड के बाद ग़ायब होने वाले बच्चों के बारे में सामने आये आँकड़ों ने इस सच्चाई को एकदम साफ़ कर दिया। अगर निठारी काण्ड जैसी घटनाएँ न भी हों, हालाँकि ऐसा होना असम्भव है, तो भी यह समाज अस्सी फीसदी जनता के लिए जीने के लायक नहीं है। समाज के सारे संसाधनों और समृद्धि को पैदा करने वाला वर्ग सिर्फ़ इस समाज के मुनाफ़ाखोरों की जूठन चाटने का मजबूर है, जो मुनाफ़ाखोर कोई भौतिक सम्पदा नहीं पैदा करते और सही मायनों में एक अतिरिक्त और फालतू वर्ग है जिसके बिना इस समाज का कुछ नहीं बिगड़ेगा। समाज का यह पंद्रह फीसदी हिस्सा समाज के नब्बे फीसदी संसाधनों पर कब्ज़ा जमाकर बैठा है, जबकि समस्त भौतिक सम्पदा पैदा करने वाला वर्ग ज़िन्दगी की बुनियादी शर्तों से भी वंचित है।

निठारी काण्ड ने यह दिखला दिया कि यह आर्थिक शोषण और उत्पीड़न शोषक वर्गों की धनलोलुपता को किस हद तक ले जा सकता है। निठारी काण्ड ने दिखला दिया कि पैसे की हवस इंसान को इंसान नहीं रहने देती है। निठारी काण्ड ने दिखला दिया कि आज का पूँजीपति वर्ग अपने मानव होने की शर्तों को भी खो चुका है। इसने सिद्ध कर दिया है कि पूँजीवादी व्यवस्था ही नहीं पूरी पूँजीवादी सभ्यता अपने कोर तक सड़ चुकी है और पतित हो चुकी है और इसकी सही जगह बहुत पहले से ही इतिहास का कूड़ेदान है।

हम तमाम नौजवानों से पूछना चाहते हैं कि क्या वे इसी आदमखोर समाज और सभ्यता के 'लॉ एण्ड ऑर्डर' को कायम रखने के लिए प्रशासनिक सेवाओं और पुलिस सेवाओं में जाने की परीक्षाओं में पास होने के लिए अपनी अक़्ल और शरीर घिसते रहना चाहेंगे? क्या अब भी कोई भ्रम है इस व्यवस्था को लेकर?

हम तमाम मेहनतक़शों से पूछना चाहेंगे कि अब और किस चीज़ का इन्तज़ार है और कब तक? पहले तो यह पूँजीपति वर्ग कारखानों में उनके शरीर को घिस-घिसकर अपने मुनाफ़े की हवस को शान्त कर रहा था और अब वह उनके बच्चों के साथ दुष्कर्म और उनका मांसभक्षण कर रहा है। क्या इससे भी बर्बर कोई अत्याचार सह लेने का इन्तज़ार है?

हम तमाम सभ्य नागरिकों से पूछते हैं कि क्या वे अपने बच्चों को एक ऐसे नरभक्षी और असुरक्षित समाज में बढ़ता देखना चाहेंगे जिसमें ग़रीबों के बच्चों के साथ ऐसा बर्ताव किया जाता है? हम उनसे पूछना चाहेंगे कि खुद उनके बच्चे ऐसे समाज में कब तक सुरक्षित हैं? क्या हर संवेदनशील नागरिक का यह कर्तव्य नहीं है कि ऐसी व्यवस्था और समाज को आमूल-चूल बदल डालने की लड़ाई में शामिल हो जाएँ?

हम सभी शिक्षकों और बुद्धिजीवियों से पूछना चाहेंगे कि वे बच्चों को किस समाज और संविधान के प्रति निष्ठावान होने की शपथ दिलवाएँगे? वे उनमें किस व्यवस्था के प्रति प्रतिबद्ध होने की भावना पैदा करेंगे? जो आगे चलकर उनका ही मांस नोच-नोचकर खाए? हम पूछना चाहते हैं कि कहाँ हैं हमारे देश के क्रिस्टोफर कॉडवेल, राल्फ फॉक्स, विक्तोर ख़ारा जो बेहतर मानवीय मूल्यों के लिए लड़ते हुए शहीद हो जाने वाले बुद्धिजीवी थे? क्या हमारे समाज में अब कोई विद्यालंकार जैसा शिक्षक नहीं पैदा होगा जिसने भगतसिंह जैसे क्रान्तिकारियों की एक पूरी पीढ़ी तैयार करने में महती भूमिका निभाई? कहाँ हैं हमारे देश के फेदरीको गर्सिया लोर्का और नाज़िम हिक़मत?

ये सवाल आज हर संवेदनशील, इंसाफ़पसन्द, तरक्कीपसन्द, और सभ्य नागरिक के सामने खड़ा है कि आख़िर किस चीज़ का इन्तज़ार है और कब तक? दुनिया को तुम्हारी ज़रूरत है! बदल दिये जाने के लिए!

मक्सिम गोर्की : एक सच्चा सर्वहारा लेखक

(पेज 22 से जारी)

होकर विश्व साहित्य में दिलचस्पी लेने लायक़ हुई है वह गोर्की के कृतित्व की क्लासिकी गहराई और उनकी महानता से लगभग अपरिचित है। मक्सिम गोर्की का विराट रचना संसार था, लेकिन पूरी दुनिया के साहित्य प्रेमियों का एक बड़ा हिस्सा आज भी उससे अनजान है। उनके कई महान उपन्यास, कहानियाँ, विचारोत्तेजक निबन्ध तो अंग्रेज़ी में भी उपलब्ध नहीं हैं। इस मायने में हिन्दी के पाठक गोर्की के साहित्य से और भी अधिक वंचित रहे हैं। हिन्दी में तो गोर्की के साहित्य का बहुत छोटा हिस्सा ही लोगों के सामने आ सका है। उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'एक फालतू आदमी का जीवन' और 'मत्वेई कोझेम्याकिन का जीवन' आज तक हिन्दी में अनूदित नहीं हुए हैं। उनका बहुश्रुत चार खण्डों वाला अन्तिम विराट उपन्यास 'क्लिम सामगिन की ज़िन्दगी' का तो अंग्रेज़ी में भी अनुवाद नहीं हुआ है।

इधर आम तौर पर साहित्य में जिन चीज़ों का बाज़ार निर्मित हुआ है उसमें गोर्की, शोलोखोव जैसे लेखकों का साहित्य वैसे भी समाज-बहिष्कृत है। उनकी महत्वपूर्ण रचनाओं से अनभिज्ञता और वैचारिक पूर्वाग्रहों के चलते गोर्की की कालजयी महानता से आज नये पाठक लगभग अपरिचित हैं। इस अनमोल विरासत को पाठकों को उपलब्ध कराने की चुनौती को स्वीकारना होगा। यह हमारे साहित्य और समाज दोनों को नई ऊष्मा से भर देगा।